ISSN 2231-1629
Knowledge Resonance

IMPACT FACTOR 8.072
January - June 2021- Vol. 10 No. 1

भाषा और भूमंडलीकरण

डॉ. विजयसिंह ठाकुर

★★★

21 वीं शताब्दी में भूमंडलीकरण एक प्रबल रूप से उभरा है। भूमंडलीकरण एक ऐसी षक्ति है जो मनुष्य के बीच आर्थिकी, तकनीकी, संस्कृति एवं प्रशासन के संदर्भ में राष्ट्रीय दायरों से ऊपर अंतर क्रियाओं में वृद्धि कर रही है। इसके साथ ही इसके कारण उत्पादन प्रक्रिया, श्रम बाजार राजनीतिक इकाइयों तथा समाज व्यवस्थाओं का विखंडन भी हो रहा है। "भूमंडलीकरण के कारण कुछ शब्द हमारी भाशा में आ रहे हैं। डर यह है कि भाषा का मूल स्वरूप में बहुत बड़ा परिवर्तन ना हो? नए शब्द, नहीं युक्ति यह तो आएगी। बहुत बार इससे भाषा समृद्धि भी होती है, प्रकृति के विपरीत ना हो? शब्दों का एक समाज, इतिहास परिवार भी होता है। शब्द का समूह समाप्त होता है तो, एक परंपरा की समाप्ति भी तय होती है। साम्राज्यवाद की प्रकृति यही होती है कि वह वाणी वृत्ति से लाभ कमाएं स्वदेशी उत्पादन खत्म हो रहे हैं, विदेशी कंपनियों के आक्रमण से देसी उद्योग बंद हो रहे हैं।"

भारतीय किसान देसी बीज खो चुके हैं। युवाओं का बड़ा वर्ग अपनी कार्य संस्कृति से विलग है। मीडिया की आक्रामक मुद्रा, विज्ञापन के सहारे संस्कृति का खुला नर्तन, संस्कृति का विकृतिकरण; यह भी भूमंडलीकरण की देन है। देश में 1991 में भूमंडलीकरण की शुरुआत हुई। शासकों को लगा था कि हम ज्यादा कमजोर है। कमजोरी को दूर करने के लिए भूमंडलीकरण जरूरी समझा था। एक और विष्व बैंक अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष भारत में ग्लोबलाइजेशन का नुस्खा लागू करने के लिए तैयार बैठे थे। वित्त मंत्री डॉ मनमोहन सिंह के कार्यकाल में खुली आर्थिक नीति का अवलंब करना भारत में शुरू हुआ उसके बाद बीस–पच्चीस साल में व्यक्तिवाद बड़ा, प्रगतिशील शक्तियां कमजोर हुई। संगठित प्रतिरोध से कुछ हासिल नहीं ? विश्वास भी हमारा कमजोर हुआ आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा भाषिक क्षेत्र में देखने को मिल रहे हैं।

भूमंडलीकरण औद्योगिक क्रांति का दूसरा अध्याय बन गया। हमें यह भी नहीं भूलना है कि इजरायल के लोकप्रिय लेखक एमोस ओज कहते हैं कि, "हर देश और काल में तानाशाही, दमन, नैतिक दमन अत्याचार और नरसंहार का प्रारंभ हमेशा भाषा के प्रदूषण और विकृ त, क्रूर शक्तियों को शराफत और सादगी भरे विश्लेशण दिए जाने से होता है। या फिर जहां संवेदनशील और नाजुक शब्दावली की जरूरत होती है वहां परजीवी समाज के कीड़े या राजनीतिक कोड जैसे ऊथले और अमानवीय शब्द इस्तेमाल में लाए जाते हैं। लेखक को यह समझ लेना चाहिए कि, जहां भी इंसानों को परजीवी या कीड़ा कह कर बुलाया जाने लगता है, वहां हत्यारे दस्तों और निष्क्रमणात्मक कारवाईयों के दिन बहुत दूर नहीं होते। जब भी युद्ध को शांति का नाम दिया जाता है, दमन और अत्याचार को सुरक्षा कह कर बुलाया जाता है और नरसंहार को मुक्ति की संज्ञा दी जाती है तो भाषा के इस दुषण के साथ–साथ जीवन एवं मानवता की अपवित्रीकरण की तैयारी अनिवार्यता शुरू हो जाती है।" एमोस ओज के विचारों से यह ध्यान में आता है कि, साम्राज्यवादी ताकतें मुखौटा पहनकर कैसे मानवीय जीवन को गड़मड़ कर रही है? यह भूमंडलीकरण की देन है। आज हम देख रहे हैं; बाजार इस तरह आक्रमण कर रहा है कि वह मानो भारतीय भाषाओं को खत्म कर रहा है।

एक और हिंदी भाषा का प्रयोग विश्व बाजार का बड़ा केंद्र बन चुका है। उन्हें पूरा पता है कि भारत की जन भाषा के माध्यम से ही उनका व्यापार सहज हो सकता है। अंतराष्ट्रीय किसी भी विदशी भाषा से शब्द लेना कोई अपराध नहीं है। वह भाषा के कलेवर को बढ़ाता है। पर एक और भूमंडलीकरण के प्रभाव में अंग्रेजी शब्दों के मायाजाल में पिरोई गई हिंदी को समाज में स्वीकृत कराए जाने का अभियान चल रहा है। विज्ञापनों में हिंदी को रोमन लिपि में लिखने का प्रचलन बढ़ता जा रहा है, हिंदी और भारतीय भाषाओं के सामने यह एक बड़ा प्रश्न बनकर उभर रहा है। एक और विकसित राष्ट्र के लिए भारत एक बड़ा बाजार बन गया है। आर्थिक सुधार, खुली अर्थनीति, आर्थिक उदारीकरण, निजीकरण तथा भूमंडलीकरण कुछ ऐसे सकारात्मक शब्द ने विधान में बड़े पैमाने पर बार–बार प्रयोग में आते हैं।

इन शब्दों द्वारा हमारें मन पर भावनात्मक गहरी सोच, इस पद्धति से डाली जाती रही है कि 21वीं सदी में मानव जाति का कल्याण केवल वैश्वीकरण द्वारा ही हो सकता है। एक और साम्राज्यवादी ताकतों की भाशा का उदय होता हुआ हम देख रहे हैं। बाजार पर अधिपत्य जमाना वैश्वीकरण का तकाजा लगा रहता है इसके लिए वह नई नीति,नई अर्थ दृष्टि और नई उपभोक्ता जीवन शैली को विकसित कर रहा है। अपने वर्चस्व को स्थापित करने के लिए उसने भाषा को औजार के रूप में इस्तेमाल किया है। एक और भाषाएं वैचारिक आदान–प्रदान का माध्यम बन रही है तो दूसरी ओर षब्द संस्कृति का नया वैश्विक रूप धारण कर रही है।

वैश्विक स्तर पर भाषाओं को लेकर नए सिरे से चिंतन शुरू हो गया है। बदलती हुई इस दुनिया में भाशा के सर्वव्यापी प्रदूशण की आड़ में फासीवादी शक्तियों का जो जमाव हो रहा है उसमें एक संवेदनशील व्यक्ति नागरिक या लेखक की भूमिका क्या हो सकती है? हमारी

मानव मुक्ति की आड़ में आ रहे अवांछित तत्वों को निकाल फेंकना होगा। एक जागरूक नागरिक का कर्तव्य होता है कि वह समाज और राष्ट्र निर्माण की धुरी बन सके भूमंडलीकरण के नाम पर गुलामगिरी का नये कांड को समझने में देरी नहीं करनी चाहिए अपने अस्तित्व और अस्मिता की लड़ाई के लिए भाषा के नए औजार को तलाशना होगा। भूमंडलीकरण से हमारी बोलियों को मुक्त करने का शड्यंत्र रचा जा रहा है। प्रत्येक प्रांत की अपनी भाषा हमारे पास थी हर प्रांत में अपने–अपने शहर–गांव की एक बोली थी। बोली भाषा का एक महत्वपूर्ण रूप है।

बोलियां हमारी स्थानीयता का रंग है, हमारे गांव की मिट्टी की गंध है। उसमें ही हमारी सहजता का भाव छिपा हुआ है। इसे बचाना हमारा दायित्व है। हिंदी भाषा का नया रूप विज्ञापन या भाषा के रूप में उभर कर सामने आ रहा है। "हमारे गोरेपन को बढ़ाने वाली अनेकों क्रीम है।" फिल्मी सितारों के मनपसंद साबुन है। "यह दिल मांगे मोर" राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की पंक्ति याद आ रही है–" हम कौन थे क्या हो गए और क्या होंगे अभी, आओ विचारे आज मिलकर यह समस्याएं सभी।" मित्रों भाषा में अनुकूल परिवर्तन कराना भूमंडलीकरण का स्वभाव बन गया है। मनुष्य समाज का जीवित सदस्य "संसाधन" बन गया है। टी.एस. इलियट के वह शब्द "भाषा बासी हो चुकी है।" हमारे देश में अज्ञेय जी ने कहा था, "बहुत घीसने से बासन का मुलम्मा छुट जाता है।" उसी तरह भाषा के साथ भी हो गया है।

भूमंडलीकरण की एक अच्छी बात यह हुई है कि अनुवाद प्रक्रिया में प्रगति हुई है। विश्व की भाषाएं निकट आ चुकी है। सभी भाषाएं अपने भाषा और साहित्य को समृद्ध करने के लिए अनुवाद का अवलंब कर रही है। इसके कारण दुनिया की श्रेष्ठ रचनाएं अन्य भाषा–भाषियों को पढ़ने मिल रही है। हमारी संवेदना विशय तथा अभिव्यक्ति की भाव भंगिमा का विस्तार हो रहा है। जो निश्चित ही साहित्य में रुचि रखने वाले पाठकों के लिए उत्साहवर्धक बात साबित हुई है। बहुत बार समयानुसार व्यवहारिक होना भी जरूरत बन जाती है, भाषा,संस्कृति, धर्म, इतिहास, समाज, राजनीतिक व्यवस्था आदि में एक अहम भूमिका निभाती है। भाशा के संबंध में कहा जाता है कि, "चार कोस पर पानी बदले,आंठ कोस पर बानी।" इसी उक्ति को सार्थक करते हुए हिंदी भाषा ने भी अपने कई रूप बदले हैं। वैसे भी भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार भाषा के काल, स्थान, क्षेत्र विकास तथा प्रयोग के आधार पर कई रूप होते हैं। हिंदी के भी राजभाषा, राष्ट्रभाषा, अंतराष्ट्रीय भाषा, हिंदवी, हिंदुस्थानी, उर्दू, दक्षिणी, संचार भाषा, संपर्क भाषा आदि कई रूप होते हैं। साहित्यिक भाषा, कार्यालयीन भाषा, बोलचाल की भाषा आदि और रूप होते हैं। भाषा की संपन्नता का एक आधार उसकी साहित्यिक संपन्नता है। किसी भी भाशा के विकास का मापदंड उस भाषा का साहित्य होता है। भाषा के दो रूप होते हैं। एक सृजनात्मक और दूसरा प्रयोजनमूलक रूप। भाषा के प्रचार–प्रसार में योगदान देता है तो उसका सृजनधर्मी रूप भाषा को संपन्न बनाता है।

आज सूचना प्रौद्योगिकी के युग में भाशा की संपन्नता की कसौटी हिंदी का व्यावसायिक–व्यापारिक रूप मानने की भूल कर रहे हैं। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि भूमंडलीकरण औद्योगिक क्रांति का दूसरा अध्याय है। आज विश्व एक और निकट हुआ है अर्थात ग्लोबल विलेज की अवधारणा अवतीर्ण हो गयी है। "अधिकार खोकर बैठे रहना यह महा दुष्कर्म है। न्यायार्थ अपने बंधु को भी दंड देना धर्म है।"

संदर्भ–

1. *हिंदी साहित्य का इतिहास–रामचंद्र शुक्ल*
2. *हिंदी साहित्य का इतिहास–डॉ.नगेंद्र*
3. *हिंदी साहित्य युग और प्रवृतियां–डॉ.शिवकुमार षर्मा*
4. *भाषा विज्ञान एवं हिंदी भाषा–डॉ.अंबादास देशमुख*
5. *हिंदी:राष्ट्रभाशा से विष्व भारती की ओर–सं.डॉ.सुरेश माहेश्वरी*